पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा ३४
तारीख १४-०२-१९८९, प्रवचन नंबर ११८

व्यवहार कहाँ है?

मुमुक्षु: अज्ञान, अज्ञान।

पू. लालचंदभाई: वो छूटना (चाहिए कि) मैं पर को जानता हूँ, ऐसा अध्यास अनंतकाल से है - मैं कर्ता हूँ और ज्ञाता हूँ पर का। पर का कर्ता भी नहीं और पर का ज्ञाता भी नहीं है; ज्ञायक का ज्ञाता (हूँ) बस। कर्ताबुद्धि छुड़ाने के लिए अकर्ता का शब्द बराबर लिखा है, अकारक-अवेदक।

मुमुक्षु: और कर्ता के उपचार (के निषेध) के लिए कुंदकुंदाचार्य ने अकर्ता को ही लिया है।

पू. लालचंदभाई: अकर्ता लिया है।

मुमुक्षु: उपचार के लिए भी।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अपने को जो बात वहाँ आ गयी दिमाग में, वो यथार्थ आयी है।

मुमुक्षु: एकदम बराबर!

पू. लालचंदभाई: अचानक आयी थी न? कोई विचार (कुछ सोचे) बिना उद्भवी थी। कोई व्यवस्थित अपने को चर्चा करते-करते उद्भव हुआ, ऐसा नहीं। अंदर से आ गया (एकदम)। आहाहा!

मुमुक्षु: अंदर की बात अंदर से आ गयी।

पू. लालचंदभाई: अंदर से आ गयी क्योंकि वो खटकता था न अपने को। अपने को समाधान नहीं होता था। भले कर लेते थे मगर '(नियमसार गाथा ७७-८१ में) किसलिए यह लिखा?' (ऐसा लगता था)। अब जब ये छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान है तब कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं, कारण नहीं कहने की क्या जरूरत है? वह उपचार आता था (कि) शुद्धपर्याय का मैं कर्ता हूँ। निश्चय मोक्षमार्ग का करनेवाला आत्मा है? कि नहीं! पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं अकर्ता हूँ। उसके अंदर दो सत् की घोषणा हो गई - आत्मा अकर्ता (है) और पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं नहीं हूँ। निश्चय मोक्षमार्ग का जो परिणाम प्रगट होता है, आहाहा! उसका मैं कर्ता नहीं, धर्ता नहीं और हर्ता भी नहीं। वहाँ से खिंच जाता है उपयोग, सीधा अकर्ता में आ गया। आहाहा!

धर्ता में आधार-आधेय संबंध नहीं है। ये ... पदार्थ तो समझ लिया। धर्ता में आधार-आधेय संबंध द्रव्य और पर्याय के बीच में नहीं है। पर्याय का आधार पर्याय है, इसलिए मैं उसको धरनेवाला नहीं हूँ। मैं धर्ता नहीं हूँ। मेरे आधार से परिणाम उत्पन्न नहीं होता है। परिणाम का आधार परिणाम है। आहाहा! कर्ता नहीं हूँ, धर्ता नहीं हूँ और हर्ता भी नहीं हूँ।

चलो! ३४ वीं गाथा!

श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका जीव नाम का अधिकार है। हिन्दी में। भाई! शास्त्र ले लो, समयसार। भाई साहब (संध्या बहन के पिताजी) को (शास्त्र) दो।

मुमुक्षु: उनको गुजराती नहीं चलेगा।

पू. लालचंदभाई: हिंदी तो नहीं है इधर।

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावोंका करे।
इससे नियमसे जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥

अब हिंदी में ही लूँगा। ये हरिगीत था न इसलिए गुजराती (में लिया)...

जिससे 'अपनेसे अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं' यानि अपने शुद्धात्मा के अलावा जितने सर्व पदार्थ हैं, वो पर हैं। स्व और पर हैं; मैं स्व हूँ (और) ये सब बाकी सब राग-द्वेष-मोह, क्रोध-मान-माया-लोभ सब पर हैं, वो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म सब पर हैं। ऐसे, **ऐसा जानकर** जब ऐसा जाना... देखो! प्रत्याख्यान आता है, त्याग की बात। कैसा जाना? कि मैं ज्ञायक हूँ और भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म मेरे से भिन्न हैं, ऐसा जब आत्मा का अनुभव किया... वो शब्द की बात नहीं है, विकल्प की बात नहीं है। मेरा जो आत्मा है, वो रागादि जो भावकर्म उत्पन्न होता है, उससे मेरा आत्मा भिन्न है - ऐसा अंतर्मुख होकर आत्मा का अनुभव किया, ऐसा आत्मा को जाना, स्व से भिन्न पर और पर से भिन्न मैं - ऐसा परस्पर भिन्नता का ज्ञान हुआ, ऐसा जाना उसका नाम प्रत्याख्यान है। यानि मिथ्यात्व का त्याग हो गया।

पहले मिथ्यात्व का त्याग होता है, बाद में अव्रत का त्याग होता है, बाद में कषाय का त्याग होता है (और) अंत में योग का त्याग होता है। क्रम-क्रम से त्याग होता है। त्याग का अर्थ ऐसा है कि जैसे-जैसे आत्मा का ग्रहण होता है वैसे-वैसे आस्रव का त्याग होता है। यानि आस्रव की उत्पत्ति नहीं होना उसका नाम त्याग है। आस्रव उत्पन्न होवे और मैं उसका त्याग करूँ - ऐसी बात नहीं है।

क्या कहा? कि जब आत्मा का अनुभव हुआ कि देह से मैं भिन्न हूँ, राग से मैं भिन्न हूँ ऐसे ज्ञायक के सन्मुख होकर शुद्धात्मा का अनुभव हुआ, स्वानुभव हो गया। तो स्वानुभव हुआ तो सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया; तो सम्यग्दर्शन का ग्रहण और मिथ्यात्व का त्याग (हुआ)। मिथ्यात्व का त्याग कब होता है? कि सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब; और अतीन्द्रियज्ञान का ग्रहण और इंद्रियज्ञान का त्याग हो गया। जब अतीन्द्रिय मैं हूँ (ऐसा अनुभव हुआ) तब इंद्रियज्ञान मैं हूँ ऐसी बुद्धि निकल गई। भले इंद्रियज्ञान रह जाए मगर इंद्रियज्ञान मेरा स्वरूप नहीं है (ऐसा निर्णय हो गया)। तो इंद्रियज्ञान का त्याग और राग का भी त्याग हो गया।

प्रत्याख्यान का अर्थ त्याग (है)। मगर त्याग है न, (वो) ग्रहण पूर्वक त्याग होता है। ग्रहण के बिना त्याग नहीं होता है। जैसे बाज़ार में जब जाओ आप कोई वस्तु लेने के लिए, तो आप पैसे तो देते हो। पैसे दे दो व्यापारी को और आप कहो कि कोई चीज मेरे को चाहिए नहीं - ऐसा बनता है?

मुमुक्षु: नहीं होता ऐसा।

पू. लालचंदभाई: वो माल लेने के बाद ही पैसा आपकी जेब में से निकलता है। पहले तो माल ग्रहण करते हैं, बाद में पैसा देते हैं। वो bundle (पैकिंग) करे सब कपड़े-वपड़े की, (और फिर) बिल देवे। कपड़ा हाथ में आ गया आपके। ठीक है? बाद में आप पैसे देते हो। यानि ग्रहण पूर्वक त्याग होता है।

मुमुक्षु: पहले ग्रहण होता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! पहले ग्रहण करता है, बाद में त्याग होता है। ग्रहण ज्ञान का करता है तो अज्ञान छूट जाता है। ग्रहण सम्यग्दर्शन का होता है तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम (त्याग है)। ज्ञान **प्रत्याख्यान**। ज्ञान का ग्रहण (और) अज्ञान का त्याग, सम्यक्त्व का ग्रहण (और) मिथ्यात्व का त्याग। स्थिरता का ग्रहण - चारित्र, स्वरूपाचरण चारित्र (हुआ)। स्थिरता हुई न? तो ग्रहण हुआ वीतरागभाव का, आहाहा! तो राग के अंदर (की) एकताबुद्धि टूट गयी। आहाहा! अनंतानुबंधी कषाय गयी। आहाहा!

ये सम्यग्दर्शन में ग्रहण पूर्वक त्याग और सम्यग्ज्ञान का ग्रहण-अज्ञान का त्याग; स्वरूपाचरण चारित्र का ग्रहण और अनंतानुबंधी कषाय का त्याग, वो तीनों में घटा लेना। **ज्ञान प्रत्याख्यान है** बस। ज्ञान से सब, तीन ले लेना। **ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है-त्याग करता है, इसलिए, प्रत्याख्यान ज्ञान ही है** प्रत्याख्यान का दूसरा नाम ज्ञान है। त्याग का नाम ज्ञान है। यानि ज्ञान का ग्रहण किया तो automatic (अपने आप) त्याग हो गया तो **प्रत्याख्यान ज्ञान ही है** आहाहा! यानि ज्ञान जब प्रगट होता है तब अज्ञान दूर हो जाता है। तो प्रत्याख्यान ज्ञान ही है **ऐसा नियमसे जानना। अपने ज्ञानमें त्यागरूप अवस्था** अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था, उसका नाम **ही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नहीं।** जब वीतरागभाव प्रगट होता है तब राग प्रगट नहीं होता है, तो राग का त्याग हो गया। ग्रहण पूर्वक त्याग, बस।

इसमें लिया न **जिससे 'अपनेसे अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'** मेरे शुद्धात्मा के अलावा जितना ये जगत है वो मेरे से पर है। पर है तो पर को पर जाना, तो पर में ममत्व नहीं हुआ; स्व में ममत्व हुआ तो पर में ममत्व छूट गया। कि 'संध्या मेरी लड़की है' ऐसा जो मिथ्यात्व था और आपने कहा कि 'अरे! ज्ञान मेरा है, संध्या मेरी लड़की नहीं है' तो ज्ञान का ग्रहण कर लिया, तो संध्या तो रह गयी मगर संध्या के प्रति ममत्व (छूट गया)। निर्ममत्व का ग्रहण और ममत्व का त्याग हो जाता है। समझ में आया? **ज्ञान प्रत्याख्यान**।

मुमुक्षु: ज्ञान ही प्रत्याख्यान।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ज्ञान ही प्रत्याख्यान है। अब उसकी टीका, टीका यानि विस्तार।

यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य (आत्मा) है यह आत्मा है वो ज्ञाता द्रव्य है। **वह अन्यद्रव्यके स्वभावसे होनेवाले अन्य समस्त परभावोंको,** यानि परद्रव्य के लक्ष से जो परभाव की उत्पत्ति होती थी राग-द्वेष-मोह की, परद्रव्य के लक्ष से जो विभावभाव की उत्पत्ति होती थी, **वह अन्यद्रव्यके स्वभावसे होनेवाले अन्य समस्त परभावोंको,** राग-द्वेष-मोह को, कषाय का (भाव) क्रोध-मान-माया-लोभ, पुण्य-पाप का भाव उसमें एकत्वबुद्धि थी। पहले एकत्वबुद्धि का छूटना होता है। बाद में, अस्थिरता का छूटना बाद में होता है।

मुमुक्षु: अस्थिरता का भाव नहीं छूटता।

पू. लालचंदभाई: अस्थिरता का भाव रहता है, एकत्वबुद्धि छूट जाती है। संध्या प्रति का मोह छूट जाता है और राग रह जाता है। राग रह जाता है, गृहस्थ अवस्था में राग रहता है। वो राग तो जब मुनि अवस्था होती है न तब छूटता है गृहस्थ को। तहाँ तक राग रहता है, (वह) चारित्र का दोष है मगर

श्रद्धा का दोष निकल जाना चाहिए पहले। ममत्व निकलना चाहिए बस। समयसार शास्त्र वो ममत्व छुड़ाता है।

राग छूटता नहीं है। (राग) छोड़ने जैसा है, ऐसी बुद्धि हो गयी मगर छूटता नहीं (है)। इतनी स्थिरता नहीं है, इतनी स्थिरता नहीं है (अभी)। अंदर में तो हेय हो गया कि वो जो राग है न, उत्पन्न होता है न कुटुम्ब के प्रति, भी पापभाव है। पुण्य नहीं है, पाप है। तो जब पुण्यभाव छोड़ने जैसा है तो पाप तो छोड़ने जैसा सहज हो गया। आहाहा! ऐसा नहीं समझना कि 'राग करना' (ऐसी आचार्यदेव ने) छूट दे दी। मोह छोड़ने के बाद राग भले रहा, ऐसा नहीं करना। अभी हमारी कमजोरी है, हम स्वभाव में लीन नहीं हो सकते हैं, गृहस्थ अवस्था है, मुनि अवस्था नहीं आती है, तो क्या करें? गृहस्थ अवस्था के योग्य थोड़ा अस्थिरता का राग आता है मगर उसे अपना स्वभाव मानता नहीं है। छोड़ने लायक है राग, ऐसी बुद्धि पैदा हो गयी अनुभव के काल में (कि) ये मेरी चीज नहीं है। अब राग ही मेरा नहीं है तो मकान और ये संध्या आपकी कहाँ है? वो तो परद्रव्य है।

अन्य समस्त परभावोंको, वे अपने स्वभावभावसे व्याप्त न होनेसे पररूप जानकर, क्या कहते हैं? कि अपना जो चैतन्य आत्मा है उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय में चेतन-चेतन-चेतन व्यापक है सारे आत्मा में। और जो रागादि भाव हैं उनमें मैं व्यापक नहीं हूँ। मेरा चैतन्य द्रव्य, गुण और पर्याय। पर्याय (अर्थात्) उपयोग वो राग में जाता नहीं है। वो तो जड़ है (और) मैं चेतन हूँ। चेतन का परिणाम चेतन में व्यापक है और जड़ का परिणाम जड़ में व्यापक है। व्यापक यानि पसरता है। मैं, मेरा भाव राग में, राग के विषय में फैलता-पसरता नहीं है। जैसे शक्कर है, तो शक्कर की जो मिठास है वो शक्कर के द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त हो जाती है। मगर जो मैल है साथ में, उसमें जाती नहीं है, भिन्न रहती है। मैल भिन्न और मिठास भिन्न रहती है।

अपने स्वभावभावसे व्याप्त न होनेसे पररूप जानकर, यानि ये पराया भाव है, मेरा भाव नहीं है। रागादि भाव मेरा भाव नहीं है ऐसा जानकर, **त्याग देता है;** त्याग देता है यानि त्यागबुद्धि आ जाती है। पहले त्यागबुद्धि आती है। त्यागबुद्धि का नाम त्याग है, प्रथम। राग तो रहता है बाद में। निर्विकल्पध्यान के बाद सविकल्प में आता है तो थोड़ा राग तो रहता है मगर त्यागबुद्धि होती है। **त्याग देता है; इसलिए जो पहले जानता है...**

मुमुक्षु: त्यागबुद्धि का ही नाम त्याग है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! त्यागबुद्धि का नाम त्याग है।

मुमुक्षु: (अज्ञानी को) त्यागबुद्धि तो होती नहीं है (और) त्याग का कर्ता कैसे हुआ!

पू. लालचंदभाई: जो कुटुम्ब-परिवार, धन-धान्य, पैसा-रुपया है, भले हो! मगर उसमें त्यागबुद्धि आ जाती है कि वो चीज कोई मेरी नहीं है, मेरा तो एक ज्ञानस्वभावी आत्मा है। मैं तो ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ; वो जो जानने में आता है न, वो मेरी चीज नहीं है। ऐसे अपने को ज्ञान का ग्रहण होता है और पर का त्याग होता है। इसमें मेरेपने का ममत्व छूट जाता है। ममत्व छूट जाता है तो त्यागबुद्धि आती है। बाद में त्याग आता है higher (ऊँची) स्टेज में। पंचम गुणस्थान में थोड़ा आता है और छठवें गुणस्थान में पूरा त्याग हो जाता है। वो आगे की बात है। प्रथम तो त्यागबुद्धि होनी चाहिए।

मुमुक्षु: त्यागबुद्धि आनी चाहिए। त्यागबुद्धि यानि क्या?

पू. लालचंदभाई: त्यागबुद्धि यानि वो मेरा भाव है - ऐसी जो ममता करता था, वो राग मेरा नहीं है; राग, वो पुद्गल का परिणाम है सचमुच तो, जीव का परिणाम नहीं है। जीव का परिणाम तो चेतना, जानना-देखना। जिसमें जानन-क्रिया हो वो जीव का परिणाम है। राग तो अँधा है; जाननक्रिया उसमें है ही नहीं तो वो जड़ है, मैं तो चेतन हूँ। तो जड़ का, जड़भाव जब आये तब (उसमें) चेतन(पने) की बुद्धि छूट जाती है। ये मेरे चेतन का परिणाम नहीं है, परिणाम ही मेरा नहीं है। ज्ञान परिणाम मेरा है, राग परिणाम मेरा नहीं है। आहाहा! यानि राग मेरा नहीं है तो राग में कर्ताबुद्धि छूट जाती है।

पहले राग का कर्ता नहीं हूँ, ज्ञाता हूँ। बाद में राग का ज्ञाता भी नहीं हूँ। आहाहा! तो अंदर में घुस जाता है। तो घुसने के बाद अंदर में टिकता नहीं है। सम्यग्दर्शन तो हो गया (लेकिन) चारित्र आता नहीं है। तो गृहस्थ अवस्था में होता है (तो) सब थोड़े क्रोध-मान-माया-लोभ अस्थिरता के (परिणाम) होते हैं, उनको भिन्न जानता है; एकमेक नहीं होता है। ज्ञान के साथ राग को मिलाता नहीं है, भिन्न रहता है। ऐसा अनुभव के बाद भिन्नपना continue (धाराप्रवाह) रहता है। एकत्व नहीं होता है।

मुमुक्षु: भेदज्ञान चलता रहता है। भेदज्ञान चलता रहता है उसको। भेदज्ञान चलता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! भेदज्ञान चलता है। भेदज्ञान चलता है कि ये ज्ञान मेरा है और राग मेरा नहीं है - ये सहज दशा है। ये सहज दशा आ जाएगी, याद करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। सहज दशा है कि (राग) मेरा नहीं है, मेरा तो ज्ञायकभाव है बस! श्रद्धा में ज्ञायक आ गया। ज्ञान में, श्रद्धा में ज्ञायक आया तो मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। सहज दशा, भेदज्ञान चालू हो जाता है। पहले भेदज्ञान करना पड़ता है। पहले भेदज्ञान करना पड़ता है। भेदज्ञान करके अभेद का अनुभव करना पड़ता है। बाद में अनुभव के बाद भेदज्ञान (सहज ही) चलता है, बस।

थोड़ा कांताबेन का, मम्मी का अभ्यास हुआ (है)। बोलो, हिन्दी में बोलो। पूछो, पूछो। बोलो!

मुमुक्षु: ऐसे जब शाम होती है तो हमको रोज रात्रि के जल का त्याग का भाव आता है। तो उसको सम्यक् रीति से कैसे करना चाहिए?

पू. लालचंदभाई: जैसे ज्ञान जल का, ज्ञान जल का जब पान ज़्यादा करेंगे न, तो उस (जड़) जल का विकल्प छूट जाएगा। ज्ञान-जल पियो। ज्ञान-जल की कमी है, तहाँ तक वो (जड़-जल) पीने का भाव आता है। ज्ञान-जल ज़्यादा पीने का भाव आ जाता है तो उस जल का विकल्प सहज में छूट जाता है। उसमें भी ग्रहण पूर्वक त्याग है। ज्ञान, सचमुच तो ज्ञान जल है। जल है न जल, (ज्ञान) जल है। वो प्यास चुभती है (तो ज्ञान-जल पीने से) प्यास मिट जाती है। वो आकुलता थी न, वो ज्ञान-जल से आकुलता मिट जाती है, शांत हो जाती है। तो वो जो जल का विकल्प आता था वो भी छूट जाता है। ऐसी स्थिति आगे धीरे-धीरे हो जाती है।

पहले तो ऐसा समझो कि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग मेरे में नहीं है। पहले ये समझो कि जल पीना वो आत्मा का स्वभाव ही नहीं है। जल स्वयं आता है, विकल्प स्वयं आता है इससे मैं भिन्न हूँ। जल से भी भिन्न, जल पीने का जो विकल्प - पाप का परिणाम आया उससे भी मैं भिन्न हूँ। भेदज्ञान पर वजन दो आप। आप भेदज्ञान पर वजन दो। चारित्र के पाप का त्याग और पुण्य का ग्रहण, ऐसा जो विधि-

विधान चलता है न, उसमें कर्ताबुद्धि हो जाती है। 'ये पाप लगा मेरे को' तो पाप छोड़ने का भाव आता है और 'जल नहीं पीऊँ' तो शुभभाव होता है, (लेकिन) धर्म नहीं होता है। आप जल का त्याग करो, आहार का भी त्याग कर दो २४ घंटे तो धर्म नहीं होगा; शुभभाव है। तो क्या होता है कि अशुभ का त्याग और शुभ की प्रवृत्ति में पड़ जाएगा, तो शुभ की कर्ताबुद्धि हो जाती है। धर्म नहीं होगा। आपको और दूसरे को लगे कि ये धर्मी है मगर (वास्तव में) कर्मी है। धर्मी नहीं है, कर्मी है। कर्म करता है वो तो।

मुमुक्षु: मिथ्यात्व का पाप बड़ा है। मिथ्यात्व का पाप बड़ा है।

पू. लालचंदभाई: बड़ा है मिथ्यात्व का पाप। अपने को तो मिथ्यात्व छूटना चाहिए। मिथ्यात्व के छूटे बिना वो चारित्र का, पुण्य-पाप का भेद ख्याल में नहीं आता। पहले तो मैं पानी का ग्रहण नहीं करता हूँ और पानी का त्याग भी नहीं करता हूँ। आहार का ग्रहण करनेवाला मैं नहीं हूँ (और) त्याग करनेवाला (भी मैं नहीं हूँ)। त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति (आत्मा में) है। वो (जल) तो परद्रव्य है, परद्रव्य का ग्रहण और त्याग आत्मा में नहीं है। राग का ग्रहण और त्याग आत्मा में नहीं है। तो ज्ञान का आप ग्रहण करो तो ये परद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि टूट जाती है।

तो पहले सम्यग्दर्शन की प्रक्रिया करनी चाहिए। सम्यग्दर्शन के बिना अणुव्रत और महाव्रत नहीं आता है। अणुव्रत पंचम गुणस्थान में आता है और महाव्रत छठवें गुणस्थान में। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र होता ही नहीं है। तो पहले में पहले काम करना (कि) मिथ्यात्व का कैसे त्याग होवे। बस!

मुमुक्षु: पहले मिथ्यात्व का त्याग करना।

पू. लालचंदभाई: (नहीं तो) वो लाइन-फेर (गलत दिशा) है।

मुमुक्षु: मैं परद्रव्य का न ग्रहण करनेवाला हूँ, न त्याग करनेवाला हूँ।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! तो राग का भी ग्रहण करनेवाला नहीं हूँ और त्याग करनेवाला नहीं हूँ। कर्ता नहीं हूँ, धर्ता नहीं हूँ और हर्ता भी नहीं हूँ - राग का, राग का हों!

मुमुक्षु: कर्ता, धर्ता, हर्ता।

मुमुक्षु: समझ लो तीनों बात अभी।

मुमुक्षु: लिख लिया।

मुमुक्षु: क्या मतलब तीनों का?

पू. लालचंदभाई: राग का मैं कर्ता नहीं हूँ क्योंकि मैं उसका स्वामी नहीं हूँ। राग स्वयं होता है, उसको जानता है। मैं जाननेवाला हूँ मगर करनेवाला नहीं हूँ। और धर्ता नहीं हूँ यानि मेरे आधार से वो उत्पन्न नहीं होता है। उसको, पर्याय का आधार पर्याय है, मेरे आधार से (वो) होता नहीं है। (मैं) धरनेवाला नहीं हूँ। एक वस्तु नहीं है, आत्मा और राग अलग-अलग वस्तु हैं। बिल्कुल अलग हैं। राग राग से होता है, आत्मा से राग नहीं होता है। राग आत्मा के क्षेत्र में भी नहीं है। आहाहा प्रदेशभेद है उसका। दूसरा, कर्ता नहीं, धर्ता नहीं और हर्ता भी नहीं - यानि राग का त्याग करूँ ऐसा मेरे स्वभाव में नहीं है।

मुमुक्षु: त्याग करना भी स्वभाव में नहीं है।

पू. लालचंदभाई: राग का त्याग करना वो भी मेरा स्वभाव नहीं है। राग का मैं त्याग करूँ (ऐसा माने तो) उसमें धर्म का त्याग हो जाएगा! सूक्ष्म बात है!

मुमुक्षु: आत्मा को कर्ता मान लेंगे न तो धर्म नहीं होगा।

पू. लालचंदभाई: नहीं होगा। कर्ता मान लिया न कि मैं त्याग करूँ, राग को छोड़ूँ, राग को छोड़ूँ, पाप के परिणाम को छोड़ूँ तो आपकी बुद्धि तो पाप पर है, ज्ञायक पर तो आयी ही नहीं, तो कर्ता हो गया।

मुमुक्षु: इसको छोड़ूँ (और) इसको पकड़ूँ।

पू. लालचंदभाई: हाँ! इसको पकड़ूँ (और) उसको छोड़ूँ, पाप को छोड़ूँ (और) पुण्य को पकड़ूँ। धर्म नहीं है, शुभभाव है। शुभभाव है, उस शुभभाव के साथ मिथ्यात्व का पाप पड़ा है। शुभभाव तो आपने किया कर्ताबुद्धि से मगर मिथ्यात्व बढ़ गया उस time (वक्त)। धर्म के नाम से मिथ्यात्व बढ़ जाता है। क्या कहें? धर्म के नाम से। आपको ऐसा होता है कि मैं भगवान की दो घंटे पूजा करूँ तो धर्म हो जाएगा। समझे? एक तो कर्ताबुद्धि हुई और दूसरा वो शुभभाव है, उससे धर्म माना। Double (दोगुना) पाप, हों!

मेरे में राग नहीं होता है, मैं तो ज्ञानमयी आत्मा हूँ। तो मेरे में जो उत्पन्न होता है वो उपयोग उत्पन्न होता है, ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। मेरे में राग उत्पन्न ही नहीं होता है। राग का करनेवाला भी नहीं हूँ, राग का धरनेवाला नहीं, राग का हरनेवाला नहीं और राग का जाननेवाला भी नहीं। मैं तो जाननहार को जानता हूँ। आहाहा! आहाहा! यह बात अपूर्व है। भगवान महावीर ने ये कही है मगर ये गुम हो गया था। ये जो धर्म, वास्तविक दिगंबर धर्म क्या था वो गुम हो गया था। सब अज्ञानी, पंडित, त्यागी लोगों ने उल्टा-पुल्टा कर दिया, उल्टा-सुल्टा। मिलकर सब उल्टा कर दिया।

मेरे में राग ही उत्पन्न नहीं होता है। मेरे में ज्ञान उत्पन्न होता है समय-समय पर। और ज्ञान में वो ज्ञायक जानने में आता है। राग उत्पन्न होता नहीं है इसलिए मैं राग का कर्ता नहीं हूँ। तो राग का धरनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञान को धरनेवाला हूँ। राग को धरनेवाला मैं नहीं हूँ। उस राग को मैं छोड़ूँ, त्याग करूँ, ऐसा भी मेरा स्वभाव में नहीं है। त्याग करता ही नहीं। जो (मेरे में) है ही नहीं तो कहाँ से छोड़ूँ? और उसको जाननेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननहार को जानता हूँ, ज्ञायक को। बस! इधर आ जाओ। आहाहा! ज्ञानमात्र (हूँ, ऐसा) विश्वास कर लो... क्या?

मुमुक्षु: मात्र ज्ञायक हूँ स्वीकार कर ले।

पू. लालचंदभाई: मात्र ज्ञायक हूँ ऐसा विश्वास कर ले। विश्वास न?

मुमुक्षु: स्वीकार कर ले।

पू. लालचंदभाई: स्वीकार कर ले। मात्र ज्ञायक हूँ ऐसा स्वीकार कर ले।

राग को याद मत करो। राग है भले, कर्म है, शरीर भले हो तो हो, अपने को क्या है? पड़ोस में हैं सब। तेरे घर में कहाँ आता है राग?

मुमुक्षु: लौकिक में भी ... पड़ोस में रहते हैं न!

पू. लालचंदभाई: पड़ोसी बस! पड़ोसी में सब होता है।

मुमुक्षु: राग राग में है, मुझमें राग नहीं है।

पू. लालचंदभाई: मुझमें राग नहीं (है) बस। राग राग में है, स्वीकार करो (कि) राग राग में है। शरीर शरीर में है। जैसे शरीर शरीर में है, शरीर में आत्मा नहीं है, आत्मा में शरीर नहीं है। ऐसे राग राग में है, मेरे में नहीं है और मेरे में राग नहीं है और राग में मैं नहीं हूँ। अलग-अलग, दो चीज अलग-अलग हैं। भेदज्ञान! अलग-अलग हैं दो चीज। मेरे में राग नहीं। मेरे में तो राग नहीं और राग में मैं नहीं - इतनी भिन्नता है अंदर में।

मुमुक्षु: अस्ति और नास्ति दोनों हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! कर्ता नहीं, धर्ता नहीं और हर्ता (भी) नहीं, ज्ञाता (बस)। आहाहा! बाद में उसका ज्ञाता भी (नहीं हूँ)। आहाहा!

मुमुक्षु: ज्ञाता भी नहीं हूँ?

पू. लालचंदभाई: (नहीं, ज्ञाता भी नहीं)।

मुमुक्षु: ज्ञाता (भी) नहीं है तो फिर कर्तापना में क्या आयेगा?

पू. लालचंदभाई: कर्ता नहीं, ज्ञाता भी नहीं राग का।

मुमुक्षु: ज्ञाता भी नहीं राग का। अगर ज्ञाता रहेगा तो फिर वो आत्मा जानने में नहीं आएगा न।

पू. लालचंदभाई: देखो! एक बार तो ऐसा करना कि मैं राग का कर्ता नहीं हूँ और ज्ञाता नहीं हूँ, तो वहाँ से हटकर ज्ञायक का ज्ञाता हो जाएगा। और अनुभव के बाद सविकल्पदशा आती है तब, एक stage (स्तर) आगे, तब राग का ज्ञाता कहा जाता है व्यवहार से। राग का कर्ता नहीं मगर राग का मैं ज्ञाता हूँ। पूरे विश्व का ज्ञाता हूँ बस, सारे विश्व का साक्षी हूँ। मेरी कोई चीज नहीं है, मेरापना छूट जाता है।

मुमुक्षु: मेरापना छूटने के बाद ज्ञाता होता है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञाता है, तब ज्ञाता होता है। पहले तो परद्रव्य का ग्रहण-त्याग होता ही नहीं है।

मुमुक्षु: नहीं होता। ग्रहण ही नहीं किया तो त्याग क्या करेंगे?

पू. लालचंदभाई: आहार का लेना और आहार का छोड़ना - ये आत्मा का स्वभाव नहीं है। जल का ग्रहण करना, जल का त्याग करना मेरे स्वभाव में नहीं है। वो तो दोनों द्रव्यों की एकता हो गयी।

मुमुक्षु: ये बात आई थी हमारे यहाँ कि आत्मा भोजन करता है कि शरीर भोजन करता है? चला था ये। बोलो न, बोलो! ऐसा चला था कि लोगों ने प्रश्न किया कि आत्मा भोजन करता है कि शरीर भोजन करता है? - ये वहाँ पर बात चली थी। तो ऐसा हुआ कि राग करता है। राग को राग करता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! जो भोजन करनेवाला है वो आत्मा नहीं है। भोजन करने की जो इच्छा होती है वो इच्छा होती है भोजन करने की (लेकिन) उस इच्छा से मैं भिन्न हूँ। राग है, राग करता है। शरीर आहार नहीं लेता है और इच्छा होती है तब आहार आता है तो इच्छा के साथ संबंध है; मैं इससे अलग हूँ। इच्छा में भोजन का ग्रहण है, ज्ञान में भोजन का ग्रहण नहीं है।

मुमुक्षु: आहाहा! ये बात आज स्पष्ट हुई। सही स्पष्ट हुई। ... राग को करनेवाला राग ही है।

पू. लालचंदभाई: बस! मैं नहीं हूँ। और भोजन की इच्छा जिसमें होती है वो चीज मेरी नहीं है। इच्छा से मैं अलग हूँ। इच्छा तो विकार है, कषाय है। उस इच्छा से मैं भिन्न हूँ, अनिच्छक हूँ आत्मा हूँ। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है! ओहोहो! ये आपके देश में चलती, थोड़ी चलती (शुरू) हो गयी, ये इसके कारण।

और प्रवचन रत्नाकर आप पढ़ते हैं न, बहुत अच्छा। प्रवचन रत्नाकर में बहुत खुलासा है, प्रवचन रत्नाकर।

प्रवचन रत्नाकर दो भाग पढ़े न, वो बहुत अच्छा है। बहुत गुरुदेव ने खुलासा (किया है), दूसरे भाग में (बहुत किया है)। बस! और कोई बात उसमें आपको ख्याल में नहीं आवे तो note (नोट) कर लेना और लड़की जब आवे तब पूछ लेना। बस! (कि) ये इसका क्या अर्थ है।

इसलिए जो पहले जानता है वही बादमें त्याग करता है, यानि जो जाननेवाला हो गया, तो राग का ग्रहण छूट गया तो उसका नाम त्याग हो गया। राग की स्वामित्वबुद्धि छूट गयी। स्वामित्वबुद्धि ज्ञायक में आ गयी (कि) मैं तो ज्ञायक हूँ, राग मेरा नहीं है। स्वामीपना छूट गया उसका नाम त्याग है। स्वामीपना छूट गया उसका नाम त्याग है। राग का अभाव करने की जरूरत नहीं (है)। स्वामीपना छूटता है, राग नहीं छूटता है। देह का स्वामीपना छूटता है, देह नहीं छूटता। देह नहीं छूटता है, देह का स्वामीपना (छूटता है) उसका नाम त्याग है। बोलो! ये जरा ख्याल में आ गया।

देह नहीं छूटता है, देह तो रहता है मगर देह मेरा है ऐसा ममत्व, स्वामीपना छूट गया बस। स्वामी बन गया ज्ञायक का कि ज्ञायक मेरा स्व और मैं उसका स्वामी। स्व-स्वामी संबंध अंदर में है, देह के साथ नहीं है।

अन्य तो कोई त्याग करनेवाला नहीं है-इसप्रकार आत्मामें निश्चय करके, ऐसा आत्मा में निर्णय करके **प्रत्याख्यानके (त्यागके) समय प्रत्याख्यान करने योग्य परभाव** यानि छोड़ने योग्य जो परभाव हैं, स्वभावभाव के अलावा परभाव हैं, राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, व्रत-अव्रत का भाव ये सब परभाव हैं। व्रत का विकल्प, अव्रत का विकल्प भी (परभाव है), पुण्य और पाप परभाव हैं। उसकी **उपाधिमात्रसे प्रवर्तमान त्यागके कर्तृत्वका नाम** देखो! आत्मा उन पुण्य-पाप के भाव को छोड़ता है ऐसा भी उपचार है। सचमुच छोड़नेवाला नहीं है यानि कर्ता नहीं, धर्ता नहीं और हर्ता भी (नहीं है)। ये हर्ता का बोल आ गया। उपचार का कथन है। हरे कौन? आहाहा!

मुमुक्षु: करे तो हरे न?

पू. लालचंदभाई: करे तो हरे न। आहाहा! वो मेरी चीज ही नहीं है। स्वयं उत्पन्न होता है और स्वयं जाता है। पुण्य-पाप आता है और जाता है। मैं ग्रहण करनेवाला नहीं और त्याग करनेवाला नहीं हूँ। तो भी ज्ञान का ग्रहण हुआ तो उपचार से कहा कि राग को उसने छोड़ा। उपचारमात्र का कथन है, वास्तविक नहीं है। वो भी आया, देखो! उपचार। आहाहा!

उपाधिमात्रसे प्रवर्तमान त्यागके कर्तृत्वका नाम (आत्माको) होने पर भी, परमार्थसे देखा जाये तो परमार्थ से देखने में आवे तो भगवान आत्मा ने राग कभी ग्रहण ही नहीं किया; इसलिए राग के कर्तापने का उपचार है, त्याग के कर्तापने का उपचार है। ग्रहण करे तो त्याग करे न! आत्मा ने कभी

राग का ग्रहण नहीं किया और इसलिए राग को छोड़ने की बात (नहीं रहती)। जो ग्रहण किया हो तो छोड़े न। आहाहा! वो जो स्वभावभाव है ज्ञायक, उसने राग का ग्रहण नहीं किया है। कषाय का ग्रहण करे परमात्मा? नहीं करता है। तो छोड़ने की बात तो की (किन्तु वह) उपचारमात्र से, नाममात्र से है। त्याग किया, बस इतना ही। बाकी सचमुच त्याग नहीं किया।

परमार्थसे देखा जाये तो परभावके त्यागकर्तृत्वका नाम अपनेको नहीं है, स्वयं तो इस नामसे रहित है, आहाहा!

मुमुक्षु: **इस नामसे रहित है,...**

पू. लालचंदभाई: यह नाम ही नहीं है आत्मा में। राग का त्याग करे, राग का हर्ता - ऐसा स्वभाव नहीं है। राग का हरनेवाला, राग को छोड़नेवाला, त्याग करनेवाला, मिथ्यात्व का त्याग करनेवाला आत्मा नहीं है क्योंकि ग्रहण नहीं किया मिथ्यात्व का। तो भी जब सम्यग्दर्शन होता है, मिथ्यात्व छूट गया तो त्याग किया - ऐसा कहने में आता है। कहने में आता है, सचमुच ऐसा नहीं है।

परभावके त्यागकर्तृत्वका नाम अपनेको नहीं है, स्वयं तो इस नामसे रहित है, अनामी (नाम रहित) है।

मुमुक्षु: वह नाम उसका नहीं है।

पू. लालचंदभाई: त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति है। आहाहा! **क्योंकि ज्ञानस्वभावसे स्वयं छूटा नहीं है,** त्रिकाली द्रव्य की बात करते हैं कि आत्मा तो ज्ञानमय है, कभी रागमय हुआ नहीं है।

रागमय हो गया तो राग का त्याग करूँ न? मैं तो तीनों काल ज्ञानमय हूँ। आहाहा! ज्ञान से लबालब भरा हुआ हूँ। राग को ग्रहण नहीं किया तो छोड़ने की बात कहाँ है? आहाहा! सब व्यवहार से बातें ऐसी चलती हैं, निश्चय की बात की किसी को खबर (नहीं है)। ख्याल ही नहीं है कि ज्ञायकभाव क्या है? शुद्धात्मा क्या है? शुद्धात्मा तीनों काल शुद्ध है, अशुद्ध हुआ ही नहीं (है)। अशुद्ध हो तो छोड़ने की बात हो, मगर आत्मा तो तीनों काल ज्ञानस्वभाव से छूटा नहीं है यानि शुद्धस्वभाव से छूटा नहीं है, वो तो शुद्ध ही है तीनों काल। अशुद्ध को ग्रहण नहीं किया है तो अशुद्ध को छोड़ने की कहाँ बात है? कर्ता नहीं, धर्ता नहीं और हर्ता भी नहीं हूँ।

इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है- यानि ज्ञान का नाम ही प्रत्याख्यान है। मैं ज्ञानमय आत्मा हूँ तो रागमय नहीं हूँ (ऐसा) आ गया। आ गया, आ गया कि नहीं? मैं ज्ञानमय हूँ...

मुमुक्षु: मैं रागमय नहीं हूँ।

पू. लालचंदभाई: (वो) आ गया कि नहीं? तो रागमय नहीं हूँ उसका नाम त्याग। मैं रागमय हूँ वो दोष था। अब मैं ज्ञानमय हूँ और रागमय नहीं हूँ तो भिन्न हो गया, तो उसका नाम राग का त्याग किया। यानि एकत्वबुद्धि छूट गयी। राग भले रह गया (मगर) राग की स्वामित्वबुद्धि छूट गयी। स्वामित्व छूट गया, मालिकपना छूट गया।

मुमुक्षु: भाई! ज्ञानी माने क्या?

पू. लालचंदभाई: ज्ञानी (मतलब) अनुभव, आत्मा का अनुभव। हाँ! आत्मा के अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में आवे, अनुभव में आवे उस समय अतीन्द्रिय आनंद आना चाहिए, उसका नाम

ज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान, ज्ञान नहीं है। शास्त्र के लक्ष से जो ज्ञान होता है वो ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है। वो सच्चा ज्ञान तो, जिसका है ज्ञान उसको जाने। जब ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है न, तब अतीन्द्रिय आनंद आता है। जहाँ तक अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद नहीं आवे तहाँ तक ज्ञान हो गया, ऐसी भ्रांति नहीं करना। जब ज्ञान प्रगट होगा आत्मा का, आत्मा का दर्शन होगा उस समय अतीन्द्रिय आनंद आएगा। कैसा आनंद? सिद्ध जैसा। सिद्ध जैसा (लेकिन) मात्रा कम। मात्रा थोड़ी, कम, बहुत कम, बहुत कम। समझे? मगर उन्हीं की जाति का आनंद आता है। अरिहंत की जाति का आनंद (आता है) और आपको (खुद को) मालूम होता है। जब अनुभव होगा न, ज्ञान सच्चा प्रगट होगा न; अज्ञान टलता है तब सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु: उसका नमूना क्या है?

पू. लालचंदभाई: नमूना - आनंद।

मुमुक्षु: आनंद का क्या नमूना है?

पू. लालचंदभाई: आनंद का नमूना ऐसा है कि जैसे मैं एक दृष्टांत दूँ। वैसे (तो) वचनातीत है तो भी जरा मैं समझाता हूँ, कि जैसे किसी जीव को बहुत क्रोध चढ़ गया, बहुत क्रोध आ गया। तो बहुत आकुलता, आकुलता, आकुलता (हो गयी)। क्रोध में तो आकुलता होती है न। किसी के साथ झगड़ा हो गया, किसी का क्या हो गया तो बहुत आकुलता, आकुलता, आकुलता हो गयी। इसमें आपने क्या किया? कि अभी ये दुःख है, सहन नहीं होता है। तो आपने देशनालब्धि तो सुनी थी और पढ़ा था शास्त्र। तो आपने आत्मा को याद किया। अरे! ये कर्म-कषाय करना मेरा काम नहीं है, मैं तो जाननेवाला हूँ। तो वो जो आकुलता में दुःख था और (अब) आकुलता जो घट गई, उसमें शांति का अनुभव आया; और शांति का अनुभव आया (तो) कषाय की तीव्रता में ज़्यादा दुःख और कषाय की मंदता में कम दुःख (हुआ) - दुःख (तो) है। तो कम दुःख हुआ उसका नाम सुख है। हें? तो जो कम हुई कषाय उसमें सुख-शांति मिलती है, तो कषाय के अभाव से आनंद प्रगट होता है - ऐसा (समझना)। आपको ही ये निश्चित होगा कि, जब बहुत कषाय होगी (तो बहुत आकुलता होगी), तो (मंद) कषाय की शांति-जब कषाय मंद होती है न, आहाहा! शांति शांति! तो शांति, जो इतनी कषाय की मंदता में शांति (है) तो कषाय का जो अभाव हुआ (उसमें) कितनी शांति (होगी)। वो आत्मिक शांति होती है। समझ गए? ऐसा। अनुमान से आप... अनुमान लगा लो।

बाकी तो ये बात ऐसी है न, कि वो जो आपकी लड़की है, वो आपको थोड़ा अंदर में से आनंद निकालकर स्वाद नहीं चखा सकती। (अपने) आनंद की तो वो (ही) भोक्ता है। आपको दे नहीं सकती आनंद। आप ले सकते हैं (अपने अंदर से), आपके पास है। देने-लेने का व्यवहार नहीं है। हाँ!

मुमुक्षु: एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: कर्ता ही नहीं है।

मुमुक्षु: देने-लेने का सवाल ही नहीं है।

पू. लालचंदभाई: देने-लेने का सवाल ही नहीं है। बस!

अपने आत्मा में शांति-आनंद भरा है और अंतर्मुख होकर अपने आत्मा का दर्शन करो जब, तो

अंदर में से, आनंद भरा है, तो अंदर में, पर्याय में, परिणाम में जो आकुलता थी, वहाँ आकुलता का अभाव होकर शांति का वेदन आ जाता है। असंख्यात् प्रदेश में आनंद आता है। वो जानता है निर्विकल्प ध्यान के काल में। बाद में सविकल्पदशा आती है तो आनंद तो रहता है, जाता नहीं है। एक कषाय का अभाव हो गया न? अनंतानुबंधी की चौकड़ी गयी और मिथ्यात्व गया तो जितना कषाय का अभाव (है) उतनी वीतरागता (है)। तो जितनी वीतरागता, उतना आनंद; आनंद है। वीतरागभाव के साथ आनंद का संबंध है। राग के साथ आकुलता, दुःख का अनुभव है। राग में दुःख है, वीतरागभाव में आत्मिक सुख होता है।

अभी तो ये गाथा पूरी हो गयी। अब २६ गाथा कल लेंगे, अभी समय हो गया। फिर थकान भी लगे। भोजन का टाइम भी हो गया ना।

दुकान नहीं छूटती!

मुमुक्षु: उसका स्वामीपना छूट जाता है।

पू. लालचंदभाई: बस उसका स्वामीपना (छूट जाता है)।

मुमुक्षु: अंदर से जो लगाव लगा होगा उसका।

पू. लालचंदभाई: हाँ! लगाव।

मुमुक्षु: उसका अभाव हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! मेरेपने की बुद्धि छूट जाती है।

मुमुक्षु: ... और तो सब छूटा हुआ है।

पू. लालचंदभाई: (सब) छूटा ही है। आपका कहाँ है? छूटा ही है। मेरा है (ऐसा) मान रखा है (तो) ममता छूट जाती है। ममता छूटने से वो संयोग नहीं छूटता है। संयोग अपने हाथ की बात कहाँ है? अपने लायक कहाँ है? अपने को छोड़ने का प्रश्न कहाँ है? संयोग संयोग के कारण से आता है, बस (उसका) वियोग हो जाता है।

अभी तो आपके पास (बेटी) आती है तो जैसे आपका जरा थोड़ा पहले से ज्ञान खुला, तो वो उसके साथ चर्चा करने से आपको (और) मज़ा होगा।

मुमुक्षु: अब तो चलेगी चर्चा। अब तो बराबर चलेगी।

पू. लालचंदभाई: हाँ! चलेगी। अब थोड़ा लाइन पर आ गए आप। पहले तो बिल्कुल इस बात से आप (अनजान थे), एकांत क्रियाकांड में पड़े थे - ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। करने का स्वभाव ही नहीं है। अरे! पर को जानने का स्वभाव नहीं है तो करने की बात कहाँ है? आहाहा! जाननहार को जानो बस। बाकी ये आज की जो अंतिम चार बात लिखाई (वो) बहुत अच्छी हैं।

अकर्ता ज्ञायक क्यों लिखा? दो शब्द हैं न? ... में, बराबर है। कर्ताबुद्धि जाए, कर्ता का उपचार जाए (तो) ज्ञाता-अकर्ता में आवे। आहाहा! और ज्ञाताबुद्धि जाए, ज्ञाता का उपचार जाए तब अनुभव होता है।

मुमुक्षु: बारंबार वही दो बातें सामने आती हैं।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय, ध्येय पूर्वक ज्ञेय। ऐसा ही है न! दूसरा

क्या है? और ज्ञायक के आगे विशेषण 'अकर्ता' लगाया है, (वो) बराबर ही है।

मुमुक्षु: कर्ताबुद्धि और कर्ता का उपचार...

पू. लालचंदभाई: दोनों छुड़ाने के लिए अकर्ता (लिखा है) और कुंदकुंद भगवान ने अकर्ता दोनों जगह लिया। कर्ताबुद्धि छुड़ाने के लिए अकर्ता दिया और कर्ता का उपचार छुड़ाने के लिए (भी) अकर्ता दिया। आहाहा!

गुरुदेव ने कहा कि 'शुद्ध पर्याय का कर्ता है यह उपचार भी नहीं है', वह बराबर है! आहाहा! हाँ! इतना है, कि बाहर के पदार्थ के साथ इतना निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, (कि) जब आहार की इच्छा होती है, तो इच्छा तो दोष है, इच्छा गुण नहीं है; तो इच्छा के कारण से आहार नहीं आता है। इच्छा तो ये पर्याय में होती है, पर्याय में होती है और आहार तो बाहर की चीज है। मगर उसको इतना निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि जब इच्छा होती है तब आहार आ जाता है। तो ऐसी भ्रांति होती है कि इच्छा के कारण से आहार आया। (किन्तु) ऐसा नहीं है। आहार आहार के कारण से आता है, इच्छा इच्छा के कारण से आती है। इच्छा से भिन्न ज्ञान होता है आत्मा में। इच्छा का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान। इच्छा का भी ज्ञान और आत्मा का भी ज्ञान सबको होता है।

तैयारी चल रही है? हो जाएगा न भोजन समय पर? हो गया? बस! तो फिर भोजन कर लो न, ५:३० हो गए।

ज्ञायक जानने में आता है मगर इच्छा को पकड़ता है (और) ज्ञायक को छोड़ देता है। बस! वो भूल हो गयी। इस ज्ञान की पर्याय में संध्या भी जानने में आती (है) आपके ज्ञान में, मेरे ज्ञान में नहीं आपके ज्ञान में; और ज्ञायक भी जानने में आता है, आबाल-गोपाल सबको। हें? अच्छा! आपने क्या पकड़ लिया? उसको पकड़ा, (तो) संसार उत्पन्न हो गया। उसको छोड़ दो और ज्ञायक को पकड़ लो (तो) मोक्षमार्ग शुरू हो जाएगा। इतनी देर है, इतनी देर है (बस)। दो का प्रतिभास होता है। प्रतिभास तो दो का होता है, एक का नहीं होता है।

और ज्ञायक के प्रतिभास को आपने छोड़ दिया और उसको पकड़ लिया कि वो जानने में आया, (बस) संसार उत्पन्न हो गया। अब उसको छोड़ दो। संध्या सामने हो न तो भी विचार करना कि ज्ञान जानने में आता है, संध्या जानने में नहीं आती है। ज्ञायक जानने में आता है, संध्या जानने में नहीं आती है, तो वहाँ से व्यावृत्त- उपयोग हट जाता है और उपयोग अंदर में घुस जाएगा। बस! काम हो जाएगा। इतनी देर है! ज़्यादा देर तो है नहीं। सीधा सरल है उपाय। ये अज्ञानी ने ये गड़बड़ कर दिया है बहुत, बहुत खराब कर दिया। स्वपरप्रकाशक है कि नहीं? दो का प्रतिभास होता है।